R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मूल्य–7 रुपये, वर्ष–24, अङ्क–3 मार्च 2024

मङ्गलायतन

तीर्थधाम चिदायतन, हस्तिनापुर में

श्री 1008 शान्तिनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव

(रविवार, 1 दिसम्बर से शुक्रवार, 6 दिसम्बर 2024)

मङ्गल आमन्त्रण

आदरणीय सत्धर्म प्रेमी साधर्मीजन,

सादर जयजिनेन्द्र !

समस्त जिनधर्मभक्तों को जानकर हर्ष होगा कि परमोपकारी वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की अनुकम्पा से, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के पुण्य प्रभावनायोग में, अखिल विश्व की आश्चर्यकारी, परमपवित्र तपोभूमि-हस्तिनापुर की पुण्यधरा पर, **तीर्थधाम चिदायतन** का अवतरण हो रहा है।

हस्तिनापुर वह गौरवशाली ऐतिहासिक एवं पौराणिकनगरी है, जहाँ पर तीन-तीन तीर्थंकरों (भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ एवं अरनाथ) के चार-चार कल्याणक हुए हैं। साथ ही यह पौराणिक स्थल भगवान मल्लिनाथ के समवसरण, भगवान आदिनाथ के प्रथम आहारदान तथा विष्णुकुमार के द्वारा अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनिराज पर हुए उपसर्ग निवारण का साक्षी रहा है। यह नगरी, जैन महाभारत के महानायक पाण्डवों एवं कौरवों की प्रसिद्ध राजधानी रही है। प्रतिवर्ष धर्मनगरी हस्तिनापुर में विश्व के अलग-अलग कोनों से लाखों की संख्या में दर्शनार्थी पधारते हैं।

इस संकुल के सम्बन्ध में देश के ख्यातिप्राप्त विद्वानों, श्रेष्ठियों एवं साधर्मियों ने अपनी हार्दिक अनुमोदना प्रदान कर हमारा उत्साहवर्धन किया है।

इस महान धार्मिक प्रकल्प ***तीर्थधाम चिदायतन*** में भगवान श्री शान्तिनाथ चिदेश जिनालय; श्री गन्धकुटी चौबीसी चिदेश जिनालय का भव्य **पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव रविवार, 1 दिसम्बर से शुक्रवार, 6 दिसम्बर 2024** तक होना निश्चित हुआ है। आप सब इस महामहोत्सव में सादर आमन्त्रित हैं।

आइये, तीर्थधाम चिदायतन संकुल निर्माण की अनुमोदना एवं हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र के दर्शन कर अपना जीवन धन्य करें।

——: सम्पर्कसूत्र :——

पण्डित सुधीर शास्त्री, मोबा. 97566 33800

श्री नवनीत जैन, नोएडा, मोबा. 8171012049

मङ्गलायतन

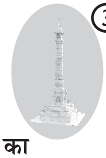

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-24, अङ्क-3 (वी.नि.सं. 2550; वि.सं. 2080) मार्च 2024

वैराग्य का धन....

वैराग्य का धन संग ले अपार,
सुख शांति का करने व्यापार।
शिव पंथचारी हैं हमारे मुनिवर,
दिगम्बरधारी हैं हमारे मुनिवर।।टेक।।

बाह्य आभूषण तज के, ध्यान आभूषण निज उर में धारा।
काँच के रत्न छोड़े, त्रय रत्नों से हुए निर्भारा।।
ज्ञान के आहारी, स्वपर हितकारी हैं,
हमारे मुनिवर।।1।।

अशुभोपयोग को नाशा, शुभ उपयोग पगड़ी है धारी।
आत्म उपवन में विचरते, शुद्ध उपयोग रूपी है गाड़ी।।
शिवरमणी वरना है, धर्म प्रभावक सारथि हैं,
हमारे मुनिवर।।2।।

चक्री इन्द्रादिक नमते, पर वे तो बस निज में ही रमते।
उपसर्ग परीषह सहते, मात्र ज्ञायक हूँ ज्ञायक ही रहते।
सिद्धों के लघुनंदन, वंदन शत बारे हैं,
हमारे मुनिवर।।3।।

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि०वि०

सह सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, मङ्गलायतन

क्या - कहाँ

<u>प्रथमानुयोग</u>	धर्म और अधर्म	5
<u>द्रव्यानुयोग</u>	समयसार नाटक	10
	स्वानुभूतिदर्शन :	16
<u>प्रथमानुयोग</u>	हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास	18
<u>करणानुयोग</u>	भरतक्षेत्र के खण्ड	21
<u>प्रथमानुयोग</u>	कवि परिचय	24
<u>करणानुयोग</u>	श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान	26
<u>द्रव्यानुयोग</u>	बालवाटिका	29
	जिस प्रकार–उसी प्रकार	30
	समाचार–दर्शन	31

शुल्क :
एक प्रति : 07.00 ₹
आजीवन (15 वर्ष) : 1000.00 ₹

प्रथमानुयोग

आगामी तीर्थधाम चिदायतन के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा पंचकल्याणक पर किए गए प्रवचनों का धारावाहिक प्रकाशन किया जा रहा है।

गर्भकल्याणक प्रवचन

धर्म और अधर्म

यह ज्ञेय अधिकार है। श्री जयसेनाचार्य ने इसे दर्शनशुद्धि का अधिकार भी कहा है। सम्यग्दर्शन, धर्म का मूल है और चारित्र, साक्षात् धर्म है। वह चारित्र कोई बाह्य क्रियाकाण्ड में नहीं परन्तु आत्मा में मोह और क्षोभरहित वीतरागी साम्यभाव प्रगट होना चारित्र है। व्रत और अव्रतरहित आत्मा का वीतरागभाव ही चारित्र धर्म है। उस चारित्र का मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना चारित्रधर्म कभी नहीं होता।

जगत के समस्त पदार्थ ज्ञेय हैं और मेरा ज्ञानस्वभाव उन सबको जाननेवाला है। इस प्रकार ज्ञेय पदार्थों की प्रतीति के साथ अपने पूर्ण ज्ञानस्वभाव की प्रतीति भी आ जाती है, इसलिए ज्ञेय अधिकार में दर्शनशुद्धि का वर्णन भी समाहित हो जाता है। जो दर्शनशुद्धि प्रगट हुई है, वह भी ज्ञान का ज्ञेय है। दर्शनशुद्धि स्वयं अपने को नहीं जानती, बल्कि ज्ञान उसे जानता है।

आत्मा में ज्ञान स्वभाव है, इसलिए वह सबको जाननेवाला है और प्रत्येक पदार्थ में प्रमेयत्वगुण है, इसलिए समस्त पदार्थ ज्ञान में ज्ञात होने योग्य—ज्ञेय हैं। यह आत्मा स्वयं ज्ञानरूप भी है और ज्ञेयरूप भी है। आत्मा के ज्ञान में समस्त पदार्थ ज्ञात हों—ऐसा स्वभाव है। पदार्थों का स्वभाव ऐसा है कि वे ज्ञान में ज्ञात हों और ज्ञान का स्वभाव ऐसा है कि वह पदार्थों को जाने। आत्मा का पर के साथ ऐसा ज्ञेय—ज्ञायक सम्बन्ध ही है। इसके अतिरिक्त आत्मा पर में कुछ करे अथवा परवस्तु आत्मा में कुछ करे — ऐसा ज्ञान का अथवा ज्ञेय का स्वभाव नहीं है। ऐसे स्वभाव की प्रतीति ही

धर्म का मूल और प्रारम्भ है।

समस्त परज्ञेय मुझसे भिन्न हैं, मैं उनका जाननेवाला ही हूँ, उनमें कुछ करनेवाला नहीं; मेरा स्वभाव ज्ञान ही है; इस प्रकार ज्ञेय —ज्ञायक का भेदज्ञान और ज्ञानस्वभाव की प्रतीति होने के बाद धर्मी कैसी भावना करता है, वह यहाँ बताया जा रहा है।

धर्मी जीव ऐसी भावना करता है कि अशुभ और शुभ उपयोगरहित होता हुआ तथा समस्त परद्रव्यों के प्रति मध्यस्थ होकर मैं अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा को ध्याता हूँ। शुभाशुभभावरहित आत्मा का भान तो चौथे गुणस्थान से ही हो जाता है।

अब, यहाँ तो आचार्यदेव अपनी वर्तमान भूमिका से चारित्रदशा के शुद्धोपयोग की बात करते हैं। शुभाशुभभावों से रहित आत्मा के स्वभाव का भान होने के पश्चात् चारित्रदशा में जो शुभभाव होता है, वह भी बन्ध का कारण होने से, उसको छोड़कर में आत्मस्वभाव को ध्याता हूँ, अर्थात् मैं स्वद्रव्य को ही दृष्टि में लेकर उसमें स्थिर होता हूँ — यह शुद्धोपयोग है, इससे अशुद्धोपयोग का विनाश होता है।

जीव को परद्रव्य के संयोग का कारण अशुद्धोपयोग है — इस प्रकार 156 वीं गाथा में अशुद्धोपयोग की बात करके, उसके शुभ और अशुभरूप दो भेदों का वर्णन 157 गाथा 158 वीं गाथा में किया है। अब, इस गाथा 159 में अशुद्धोपयोग के नाश के उपाय की बात करते हैं।

जीव ने कभी अनन्त काल से आत्मा के स्वभाव की बात रुचि से नहीं सुनी है। जब सत् सुनानेवाले मिले, तब कान में बात पड़ी परन्तु अन्दर में उसकी रुचि प्रगट नहीं की। आत्मस्वभाव की समझ के बिना अनन्त बार समवसरण में जाकर हीरों के थाल में कल्पवृक्षों के पुण्यों से साक्षात् तीर्थङ्कर भगवान की पूजा की, बाहर में भगवान के सन्मुख देखा परन्तु अन्तर में अपना आत्मा भगवान है, उसके सन्मुख नहीं देखा; इस कारण पुण्य बाँधकर संसार में परिभ्रमण किया। किसी समय देव होकर साक्षात् तीर्थङ्कर भगवान के पञ्च कल्याणक में गया परन्तु उस समय मात्र बाह्य

संयोग पर दृष्टि रखी और पुण्य—क्रिया में आत्मा का धर्म मान लिया; इस कारण संसार में ही परिभ्रमण किया। अन्दर में सहज चैतन्यस्वभाव आत्मा क्या है और उसकी धर्म की क्रिया क्या है ? — इस बात को नहीं समझा।

देखो ! यहाँ धर्म की क्रिया कही जा रही है। आत्मा के सहजस्वभाव को पहिचानकर उसकी श्रद्धा व ज्ञान करना धर्म की पहली क्रिया है। इस प्रतिष्ठा महोत्सव में दिखनेवाली बाहर की क्रिया तो जड़ की क्रिया है; अन्दर में होनेवाला शुभराग, आत्मा की विकारीक्रिया है और 'मैं जड़ की क्रिया का कर्ता नहीं हूँ तथा राग मेरा स्वभाव नहीं है' — इस प्रकार जड़ और विकार की क्रिया से भिन्न अन्तर में चैतन्यस्वभाव का भान करना, धर्म की क्रिया है। इस प्रकार क्रिया के तीन प्रकार हैं —

(1) जड़ की क्रिया,

(2) विकारी क्रिया, और

(3) धर्म की क्रिया।

● शरीरादि के हलन—चलन अथवा बोलने आदि की क्रिया होती है, वह जड़ की क्रिया है, उसका कारण जड़ है; उस क्रिया में आत्मा का धर्म—अधर्म नहीं है।

● आत्मा की अवस्था में जो शुभाशुभपरिणाम हैं, वह विकारी अरूपी क्रिया है; यह विकारी क्रिया अधर्म है, इसमें धर्म नहीं है।

● तीसरी क्रिया धर्म की है। शरीरादि जड़ की क्रियारहित तथा राग—द्वेषादि विकारी क्रियारहित आत्मा के चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा—ज्ञान —चारित्ररूपी जो पवित्र क्रिया है, वह धर्म की क्रिया है और वह क्रिया मोक्ष का कारण है।

सम्यग्दृष्टि को तीर्थङ्करनामकर्म के आस्रव की कारणभूत जो सोलहकारणभावना होती है, वह भी शुभराग की क्रिया है, उसको ज्ञानी धर्म नहीं मानते।

प्रत्येक वस्तु की सच्ची क्रिया को ज्ञानी स्थापते हैं और अज्ञानी उस क्रिया को उत्थापता है। वह इस प्रकार —

(1) जड़ की क्रिया — शरीरादि जड़ की क्रिया उसके स्वयं के कारण स्वतन्त्ररूप से होती है, आत्मा उसे नहीं करता — इस प्रकार ज्ञानी, जड़ की स्वतन्त्र क्रिया को स्थापित करते हैं और अज्ञानी कहते हैं कि जड़ की क्रिया स्वयं—स्वतः नहीं होती परन्तु आत्मा उसे करता है; अतः अज्ञानी जड़ की स्वतन्त्र क्रिया को उत्थापते हैं।

(2) विकारी क्रिया — पुण्यभाव, धर्म की क्रिया नहीं परन्तु विकारी क्रिया है, इस प्रकार ज्ञानीजन, विकार की क्रिया को विकार की क्रिया के रूप में स्थापते है और अज्ञानी उस पुण्यभाव को विकारी क्रिया के रूप में न मानकर धर्म की क्रिया के रूप में मानते हैं; अतः वे विकार की क्रिया को उत्थापते हैं।

(3) धर्म की क्रिया — विकाररहित आत्मा के वीतरागी श्रद्धा—ज्ञान—चारित्ररूप भाव, धर्म की क्रिया है — इस प्रकार ज्ञानी धर्म की क्रिया को स्थापते हैं और अज्ञानी, देह की क्रिया में तथा पुण्य की क्रिया में धर्म मानकर, आत्मा के धर्म की स्वतन्त्र क्रिया को उत्थापते हैं।

संक्षिप्त सार यह है कि ज्ञानी, जगत के समस्त पदार्थों की क्रिया को स्वतन्त्र स्थापित करते हैं और अज्ञानी जगत के समस्त पदार्थों की क्रिया को पराधीन मानकर उनकी स्वतन्त्र क्रिया का उत्थापन करते हैं।

जिसने यह माना कि एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य की क्रिया का कर्ता है, उसने सच्ची क्रिया का स्थापन नहीं, उत्थापन किया है और एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य में कुछ भी क्रिया नहीं करता — ऐसा मानना ही प्रत्येक द्रव्य की स्वतन्त्र क्रिया का स्थापन है।

जीव अनादि से अपनी ही भूल से परिभ्रमण कर रहा है। वस्तुतः अज्ञान ही सर्वाधिक महान दोष है। अज्ञान, वह बचाव नहीं है। जैसे, लौकिक में कोई अपराध करके कहे कि मुझे कानून का पता नहीं था, तो यह बचाव काम नहीं आता है क्योंकि अज्ञान, बचाव नहीं है। इसी प्रकार आत्मस्वभाव की समझ नहीं करना और पुण्य को धर्म मान लेना अज्ञान है — अपराध है और इससे जीव, संसाररूपी जेल में परिभ्रमण करता है।

जीव को सत् सुनानेवाले नहीं मिले, इसलिए वह परिभ्रमण करता है — ऐसा नहीं है परन्तु स्वयं ने आत्मा में सत् समझने की पात्रता प्रगट नहीं की तथा किसी समय सत् श्रवण का योग बना तो वहाँ रुचि नहीं की और अज्ञानभाव का सेवन चालू रखा; इसीलिए ही परिभ्रमण किया है। तीर्थयात्रा करने का भाव अथवा जिनमन्दिर बनाने का भाव भी पुण्य है, धर्म नहीं। पुण्य और पाप दोनों भाव अधर्म हैं — जिसकी ऐसी मान्यता नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है; वह जैन नहीं है।

'जो यह परद्रव्य के संयोग के कारणरूप से कहा गया अशुद्धोपयोग है, वह वास्तव में मन्द—तीव्र उदयदशा में रहनेवाले परद्रव्यानुसार परिणति के आधीन होने से ही प्रवर्तित होता है; *किन्तु अन्य कारण से नहीं। इसलिए यह मैं समस्त परद्रव्यों में मध्यस्थ होऊँ और इस प्रकार मध्यस्थ होता हुआ मैं परद्रव्यानुसार परिणति के आधीन न होने से शुभ अथवा अशुभ — ऐसा जो अशुद्धोपयोग, उससे मुक्त होकर मात्र स्वद्रव्यानुसार परिणति को ग्रहण करने से जिसको शुद्धोपयोग सिद्ध हुआ है — ऐसा होता हुआ, उपयोगात्मा द्वारा (उपयोगरूप निज स्वरूप से) आत्मा में ही सदा निश्चलरूप से उपयुक्त रहता हूँ। यह मेरा परद्रव्य के संयोग के कारण के विनाश का अभ्यास है।*'

(प्रवचनसार, गाथा 159 की टीका)

देखो! परिणति, परद्रव्य का अनुसरण करे तो अशुद्धोपयोग होता है और परिणति, स्वद्रव्य का अनुसरण करे तो शुद्धोपयोग होता है। अशुद्धोपयोग, अधर्म और संसार का कारण है तथा शुद्धोपयोग, धर्म और मुक्ति का कारण है। पुण्य और पाप दोनों अशुद्धभाव परद्रव्य की आधीनता से होते हैं; इस कारण वे धर्म नहीं है। आत्मा की आधीनता (स्व—सन्मुखता) से शुभ—अशुभभावों की उत्पत्ति नहीं होती। आत्मा का स्वभाव ज्ञाता—दृष्टा है, उस स्वभाव के आधीन रहने से शुभाशुभभावों की उत्पत्ति नहीं होती, किन्तु शुद्धता प्रगट होती है।

क्रमशः

द्रव्यानुयोग

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार प्रवचन

जो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द को छोड़कर दया, दान, व्रत, भक्ति अथवा अशुभराग में आनन्द लेने जाता है, वह तो मृगजल में प्यास मिटाने जाने वाले हिरण के समान है। वर्षीयतप करने से धर्म होगा- ऐसा मानकर वर्षीयतप करनेवाला अज्ञानी है। यदि उसमें उसको मंद कषाय रहा हो तो पुण्य बँधता है और यदि किसी संयोग की अथवा कीर्ति की आशा करता हो, तब तो पुण्य भी नहीं बँधता, पाप बँधता है; धर्म तो होता ही नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न आनन्दस्वरूप आत्मा की दृष्टि करके अनुभव करना धर्म है, परन्तु इस बात के परिज्ञान बिना अज्ञानी राग की क्रिया में धर्म मानकर ठगाये जाते हैं, आत्मा को खो बैठते हैं।

जैसे पीपल के वृक्ष में लाख होती है, वह पीपल के वृक्ष का नाश कर देती है; उसीप्रकार पुण्य-पाप का प्रेम आत्मा की शान्ति का नाश कर देता है। हमने एक जगह इसीप्रकार लाख से पीपल के पेड़ का नाश होते देखा था। ऐसा ही पीपल का दृष्टान्त कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार की 74 वीं गाथा में दिया है।

जिसको अपनी वस्तु की महिमा नहीं आती और बाहर की महिमा आती है, उसके अपना आत्मा हाथ से गया, शून्य हो गया। इसको भरे बर्तन तो खाते नहीं आया और जूठन चाटने गया। घर में पद्मिनी जैसी स्त्री होने पर भी जो कुल्टा अथवा वेश्या के यहाँ जाता है, उसको पिता समझाते हैं कि भाई! तू भरे बर्तन जूठन चाटने जाये यह शोभास्पद नहीं है। उसीप्रकार इस भगवान आत्मा को धर्म पिता समझाते हैं कि भाई! तू आनन्द के नाथ को छोड़कर पुण्य-पाप का स्वाद लेने जाता है, यह तेरी मूढ़ जैसी दशा है। तेरा स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है, उसमें आनन्द नहीं मानकर तू पुण्य-पाप में आनन्द लेने जाता है यह तो व्यभिचार है। यह तुझे शोभा नहीं देता भाई!

जो आत्मा के भान बिना महाव्रतादि का पालन करके धर्म मानता है वह वर्तमान में भी दु:खी है और भविष्य में भी दु:खी होगा। भाई! तुझको अपनी दया नहीं आती? यह बात तुझे कठोर लगती हो; परन्तु तेरे अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप भगवान को छोड़कर तू राग के प्रेम में पड़ा है इस कारण संतों को तेरी दया आती है।

आनंदघनजी लिखते हैं कि–

दोड़त दोड़त दोड़ियो, जेती मन की दौड़।
प्रेम प्रतीत विचारो हुकड़ी गुरुगम लीजो जोड़।
जेम–जेम बहुश्रुत बहुजन सम्मत, बहु शिष्ये परिवरियो।
तेम–तेम जैनशासन नो वैरी, जो नवि निश्चय दरियो रे जिनजी।।

जिसको बहुत शास्त्रज्ञान है, बहुत जीव जिसको मानते है, बहुत शिष्य है; परन्तु राग से भिन्न आत्मा का ज्ञान नहीं हैं वह जिनशासन का शत्रु है। कारण कि जैनशासन तो वीतरागभाव है। वह वीतरागभाव तो आत्मा के आश्रय से प्रकट होता है। उसका पता नहीं और राग की क्रिया में धर्म मानता है और ऐसी ही प्ररूपणा लाखों जीवों के सामने करता है, लाखों शिष्य रखता है, वह रागी वीतरागशासन का शत्रु है।

आत्मा तो राग की क्रिया से भिन्न तत्त्व है। राग की अपेक्षा से आत्मा निष्क्रिय है, राग का कर्ता नहीं है, शुद्ध परिणति का कर्ता है। राग तो आत्मा से भिन्न आस्रव तत्त्व है, कर्म और शरीर अजीव तत्त्व है। जो उनका (अजीव और आस्रव का) कर्ता होने जाता है वह मूढ़ है। जैसे – अंधकार में डोरी बल खाकर पड़ी हो वह सर्प जैसी लगती है– इसकारण उसका भय लगता है; उसीप्रकार जिसने पुण्य–पाप में ही अपनापना मान लिया है, उसको भगवान आत्मा का डर लगता है।

जैसे समुद्र स्वभाव से तो स्थिर है; परन्तु पवन के झकोरों से लहराता है; उसीप्रकार भगवान आत्मा एकरूप ज्ञान का समुद्र है; परन्तु उसको छोड़कर पुण्य–पाप के संयोग में डाँवाडोल हो रहा है।

"जीव जड़ सौ अव्यापक सहजरूप भरम सौं करम कौ करता कहायौ है।"

भगवान आत्मा कर्म और विकार से अव्यापक है- भिन्न है; परन्तु अज्ञान से भ्रम के कारण मैंने जड़ कर्म किया, मैंने राग किया- ऐसा अज्ञानी मानता है। जड़ कर्म के उदय के जोर से अपने को कर्म का कर्ता मानता है-ऐसा नहीं कहा है; परन्तु मिथ्यात्वी अज्ञानी जीव अपनी भूल से अपने को कर्म, शरीर और रागादि का कर्ता मानता है। जीव स्वयं ही भूल करता है, कर्म तो जड़ हैं, वे कोई जीव को भूल नहीं कराते हैं। जीव कर्म के निमित्त के संग में जाकर पुण्य-पाप को करता है, वह स्वयं का अपराध है। स्वयं ही अज्ञानभाव में भ्रम से भूल करता है।

जब इसको भान होता है कि मैं शरीर, कर्म से भिन्न हूँ, राग भी मेरा स्वरूप नहीं है, वह मेरा कर्तव्य नहीं है। मेरे अस्तित्व में तो ज्ञान और आनन्द है, राग अथवा विकल्प मेरे अस्तित्व में नहीं है- ऐसा जानता है, तब वह उनका कर्ता नहीं होता; परन्तु जहाँ तक शरीर, कर्म और राग-द्वेषादि से भिन्न अपने स्वरूप को नहीं जानता, वहाँ तक अज्ञान से अपने को शरीर, कर्मादि का कर्ता मानता है।

इन दो काव्यों में सरल-सरल दृष्टान्तों से मूल बात समझा दी है। अज्ञानी को इन सुकृत-दुष्कृत को आत्मा कर रहा है- ऐसा प्रत्यक्ष दिखता है -ऐसा लगता है; परन्तु भाई ! यह तेरी मूढ़ता है।

श्रोता:- यह दुकान का व्यापार छोड़कर व्रत, तप करता है, अहिंसा का पालन करता है वह सुकृत नहीं है ?

पूज्य गुरुदेव श्री:- नहीं, अहिंसा पालने का भाव राग है। राग में आत्मा की हिंसा होती है, इसलिए वह सुकृत नहीं है। मैं अन्य की दया पाल सकता हूँ- ऐसे राग में स्वरूप की हिंसा होती है। अज्ञानी अपने को राग का कर्ता मानकर चैतन्य को भूल जाता है।

मैं तो चैतन्य हूँ, मेरे अस्तित्व में पुण्य-पाप भाव नहीं है ऐसी भिन्नता के

भान के अभाव में अज्ञानी अपने से भिन्न भाव का कर्ता होता है और जीव के भाव को खो बैठता है। इस भूल को मिटाकर अपने आत्मा का ज्ञान करना ही धर्म है।

अब दृष्टान्त से इस बात को समझाते हैं कि भेदविज्ञानी जीव कर्म का कर्त्ता नहीं, मात्र दर्शक है।

भेदविज्ञानी जीव कर्म का कर्त्ता नहीं है, मात्र दर्शक है:-

जैसैं राजहंसके बदनके सपरसत,
देखिये प्रगट न्यारौ छीर न्यारौ नीर है।
तैसैं समकितीकी सुदृष्टिमैं सहज रूप,
न्यारौ जीव न्यारौ कर्म न्यारौ ही सरीर है।।
जब सुद्ध चेतनकौ अनुभौ अभ्यासै तब,
भासै आपु अचल न दूजौ और सीर है।
पूरव करम उदै आइकै दिखाई देइ,
करता न होय तिन्हकौ तमासगीर है ।।15।।

अर्थ:- जिस प्रकार हंस के मुख का स्पर्श होने से दूध और पानी पृथक्-पृथक् हो जाते हैं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवों की सुदृष्टि में स्वभावत: जीव, कर्म और शरीर भिन्न-भिन्न भासते हैं। जब शुद्ध चैतन्य के अनुभव का अभ्यास होता है तब अपना अचल आत्मद्रव्य प्रतिभासित होता है, उसका किसी दूसरे से मिलाप नहीं दिखता। हां, पूर्वबद्ध कर्म उदय में आये हुए दिखते हैं पर अहंबुद्धि अभाव में उनका कर्त्ता नहीं होता, मात्र दर्शक रहता है।।15।।

काव्य - 15 पर प्रवचन

सूक्ष्म बात है भाई ! ध्यान से सुनना।

जैसे राजहंस के मुँह में ऐसी चोंच है कि मुँह में दूध का स्पर्श होते ही दूध और पानी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इसीप्रकार सम्यग्दृष्टि जीवों की सुदृष्टि में सहजरूप से ही जीव, कर्म और शरीर भिन्न-भिन्न भासित होते हैं।

सम्यग्दृष्टि अपने को ज्ञानरूप जीव जानता है और राग–द्वेष के परिणाम कर्म तथा शरीर को अपने से भिन्न जानता है। इसीकारण सम्यग्दृष्टि को भेदविज्ञानी कहा जाता है।

अज्ञानी जीव को अपने ज्ञान और आनन्दमय स्वरूप का पता नहीं है। इसलिए वह अपने स्वरूप से विरूद्ध ऐसे शुभाशुभ विकल्प ही मेरे हैं और शरीर भी मेरा है– ऐसा मानकर उनका कर्त्ता होता है। तथा विकारी परिणाम और शरीर की– मन, वचन, काय की चेष्टा मेरी है ऐसा मानता है। यह मेरा कार्य है ऐसा मानता है।

धर्मी तो उसको कहते हैं कि जो अपने चैतन्यस्वरूप को जानता है और शरीर, कर्म तथा शुभाशुभराग को अपने स्वरूप से भिन्न जानता है। पर के शरीर और कर्म तो मुझसे भिन्न हैं ही; परन्तु यह शरीर कि जो मेरे साथ एक क्षेत्रावगाहरूप से रहा हुआ है, वह भी मेरे से भिन्न है और अन्दर में उत्पन्न होनेवाले शुभाशुभ विकल्प भी मेरा स्वरूप नहीं होने से मुझसे भिन्न हैं– ऐसा धर्मी जानता है।

समकिती की सुदृष्टि में सहजरूप ऐसा शब्द प्रयोग किया है न! अर्थात् समकिती की दृष्टि सहज ध्रुवरूप ज्ञायक पर होने से वर्तमान उत्पाद–व्ययरूप परिणामों पर उसकी दृष्टि नहीं है। ध्रुव तो वर्तमान परिणाम से भी भिन्न है।

यहाँ तो मात्र शरीर और कर्म की भिन्नता ली है; परन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान आत्मा नित्यानंद ध्रुवरूप है। जहाँ ऐसी दृष्टि हुई, वहाँ रागादि परिणाम भी मेरे नहीं हैं तो मेरा कर्तव्य भी नहीं है यह बात भी साथ ही आ जाती है।

अज्ञानी को तो मेरा क्या है और मेरा कर्तव्य क्या है इसका भी पता नहीं है और अन्य के काम करने निकल पड़ा है। दूसरों का भला करो, दूसरों की सहायता करो; परन्तु भाई! दूसरों अर्थात् जो तेरे से भिन्न द्रव्य हैं उनका काम तू किसप्रकार कर सकता है? तू और वे दोनो एक हो जायें, तब वह कार्य हो

सकता है; परन्तु ऐसा तो हो नहीं सकता। जिसको यह भान नहीं है कि शरीर भिन्न द्रव्य है, वह अपने को शरीर की क्रिया का कर्त्ता मानता है। पुण्य-पाप का विकल्प भी मेरे स्वरूप से भिन्न है ऐसा भान नहीं होने से अज्ञानी पुण्य-पाप के भाव का कर्त्ता होता है।

भाई ! यह तो वीतराग का धर्म है। जिसमें से वीतरागभाव उत्पन्न हो, वह धर्म है। राग भाव उत्पन्न हो, वह धर्म नहीं है।

'न्यारौ जीव न्यारौ कर्म न्यारौ ही शरीर है' मैं जानने-देखने के स्वभाववाला जीव हूँ। मैं जड़ कर्म और शरीर से भिन्न हूँ। मैं तो कर्म बाँधता भी नहीं और छोड़ता भी नहीं; क्योंकि जो मेरे से भिन्न हैं, उनको मैं कैसे बाँधू अथवा छोड़ ? मेरी पर्याय में पुण्य-पाप के विकल्प होते हैं; परन्तु वे आस्रव तत्त्व हैं। वे जीवतत्व से भिन्न हैं। इसलिये राग की क्रिया, कर्म की क्रिया और शरीर ये सब मुझसे से भिन्न हैं, मैं उनसे भिन्न हूँ।

जब शुद्ध चेतन को अनुभौ अभ्यासै तब ।भासे आपु अचल न दूजो और सीर है। जब जीव अन्तर्मुख होकर अपना अनुभव करता है कि 'मैं तो ज्ञायक ही हूँ'' आनन्दमूर्ति हूँ- ऐसे अनुभव का अभ्यास होता है, तब अपना अचल आत्मद्रव्य ही प्रतिभासित होता है। मैं ज्ञानानन्दमूर्ति हूँ, मेरे ऊपर दूसरा कोई सीर अर्थात् साथी अथवा मालिक नहीं है। मूल में कर्म और शरीर से ही भिन्नता कही है; परन्तु अनुभव कहा है इसकारण वहाँ तो रागादिक से भी भिन्नता भासती है। मेरे चैतन्यस्वभाव के साथ दया, दान, भक्ति आदि के विकल्प का भी मिलान नहीं हो सकता। जब राग से भिन्न आत्मा का अनुभव किया जाता है, तभी धर्म का प्रारम्भ होता है।

'मैं शुद्ध चैतन्य धातु हूँ' -ऐसा विकल्प नहीं, राग नहीं; परन्तु ऐसा अनुभव होता है। मैं शुद्ध आनन्दघन हूँ ऐसा अन्तरसन्मुख होकर अनुभव का अभ्यास वह अभ्यास है। शास्त्र का अभ्यास या व्रत का अभ्यास अथवा कषाय की मंदता करने का अभ्यास करने को नहीं कहा है; क्योंकि जीव यह अभ्यास तो मिथ्यात्वदशा में अनन्तबार कर चुका है, इससे धर्म का प्रारम्भ नहीं होता।

क्रमशः

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :– स्वानुभूति का अन्तरंग स्वरूप कैसा होता है ?

समाधान :– वह अन्तरंग स्वरूप वाणी में (पूर्ण) नहीं आता। विकल्प छूटकर अन्तर में आनन्द का वेदन आये, वह स्वयं ही अनुभव कर सकता है। अनन्तगुणों से भरा हुआ आत्मा है, उसमें उसका उपयोग स्वानुभूति होने पर लीन हो जाता है और विकल्प छूट जाते हैं। विकल्प की आकुलता छूटकर उपयोग स्वरूप में जम जाये ऐसी स्वानुभूति वचन में अमुक प्रकार से आती है, बाकी तो जो वेदन करे, वह जान सकता है। वह दशा होने पर समूची दिशा बदल जाती है। तो बाहर की–विभाव की दशा थी वह पलटकर स्वभाव की दिशा में, विकल्प छूटकर निर्विकल्प ऐसी किसी दूसरी दुनिया में चला जाता है। इस विभाव की दुनिया में नहीं, किन्तु अलौकिक दुनिया में वह चला जाता है और स्वभाव में तल्लीन–एकदम लीन हो जाता है। जैसा स्वभाव है, उसी प्रकार की परिणति स्वानुभूति में हो जाती है। वह अनुभूति वेदन में आती है, इसलिए जानी जा सकती है, वेदन की जा सकती है परन्तु कही नहीं जा सकती। आनन्द से–ज्ञान से भरपूर चैतन्य चमत्कारी देव स्वयं विराजमान है, उसकी स्वानुभूति होती है। जैसा सिद्ध भगवान को आनन्द है, उसका अंश स्वानुभूति में आता है। उस काल अनुपम गुण का भण्डार, अनुपम आनन्द से भरा हुआ आत्मा अनुपम आनन्द का वेदन करता है। विभावदशा में आनन्द नहीं है क्योंकि वहाँ ज्ञान आकुलतामय है; जबकि स्वानुभूति में निराकुलस्वरूप आत्मा, अनुपम आनन्द से भरपूर ऐसे अपने आत्मा का वेदन करता है।

प्रश्न :– शुद्धता त्रिकाल द्रव्य में रहती है और अशुद्धता पर्याय में होती है, तो क्या द्रव्य और पर्याय ऐसी सीमायुक्त दो भाग द्रव्य में हैं ?

समाधान :– द्रव्य जो मूल वस्तु है, उसमें यदि अशुद्धता घुस जाये तो

द्रव्य के स्वभाव का नाश हो जाये। मूल वस्तु में कहीं अशुद्धता प्रवेश नहीं करती, अशुद्धता ऊपर-ऊपर रहती है। जैसे-स्फटिक निर्मल है, उसके भीतर लाल-पीला रंग घुस जाये तो स्फटिक ही न रहे। लाल-पीले रंग तो ऊपरी प्रतिबिम्ब हैं। स्फटिक में प्रतिबिम्ब ऊपर-ऊपर रहते हैं, किन्तु भीतर प्रवेश नहीं करते, मूल में-तल में प्रतिबिम्ब नहीं जाता। उसी प्रकार द्रव्य स्वयं शुद्ध रहता है और पर्याय ऊपर-ऊपर रहकर उसमें सारी मलिनता होती है। यह मलिनता अनादि के कर्मसंयोग तथा पुरुषार्थ की अशक्ति के कारण होती है। वहाँ मूल वस्तु में शुद्धता रहती है और पर्याय में अशुद्धता होती है। अनादि से वस्तु ऐसी है। जैसे-पानी स्वभाव से निर्मल है, उसमें कीचड़ के निमित्त से मलिनता होती है; तथापि मूल में से शुद्धता नहीं जाती। सब मलिनता ऊपर-ऊपर होती है। मूल वस्तु में अशुद्धता प्रवेश नहीं करती, ऊपर-ऊपर रहती है, तथापि अज्ञानी मान लेता है कि मुझमें अशुद्धता प्रवेश हो गयी है। इस प्रकार दो भाग हैं कि द्रव्य उसका मूल तल है और ऊपर-ऊपर पर्यायें हैं। ज्ञायकस्वभाव ऐसा है कि उसके मूल में अशुद्धता नहीं होती, परन्तु उसकी परिणति अशुद्धरूप होती है और उसे बदला जा सकता है।

मुमुक्षु :- मलिनता ऊपर-ऊपर है परन्तु द्रव्य ही हाथ में नहीं आता?

बहिनश्री :- मूल तल हाथ में आ जाये तो सब सरल है; सब विभावभाव ऊपर-ऊपर तैरते हैं, इसलिए मूल आत्मा को जानना कि मैं अधिक (सबसे निराला) ज्ञायक हूँ। ज्ञायक स्वयं ही है, कोई दूसरा नहीं है कि जिससे उसे (जानना) दुष्कर हो। स्वयं अपने से अपने को भूला है तो अब परिणति अपनी ओर झुके तो मलिनता छूट जाय और भेदज्ञान हो।

प्रश्न :- इतनी अधिक उत्कंठा होने पर भी वर्तमान में कार्य होता दिखायी नहीं देता, तो यह उत्कण्ठा भविष्य में कार्यकारी होगी या नहीं?

शेष पृष्ठ 25 पर.....

प्रथमानुयोग

....गतांक से आगे

तीर्थधाम चिदायतन

हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास

धार्मिक नगरी हस्तिनापुर का वर्णन उत्तरपुराण से

उनके समवसरण में चक्रायुध को आदि लेकर छत्तीस गणधर थे, आठ सौ पूर्वों के पारदर्शी थे, इकतालीस हजार आठ सौ शिक्षक थे, और तीन हजार अवधिज्ञानरूपी निर्मल नेत्रों के धारक थे। वे चार हजार केवलज्ञानियों के स्वामी थे और छह हजार विक्रियाऋद्धि के धारकों से सुशोभित थे।

चार हजार मन:पर्यय ज्ञानी और दो हजार चार सौ पूज्यवादी उनके साथ थे। इस प्रकार सब मिलाकर बासठ हजार मुनिराज थे, इनके सिवाय साठ हजार तीन सौ हरिषेणा आदि आर्यिकाएँ थीं, सुरकीर्ति को आदि लेकर दो लाख श्रावक थे,अर्हद्दासी को आदि लेकर चार लाख श्राविकाएँ थीं, असंख्यात देव-देवियाँ थीं और संख्यात तिर्यंच थे। इस प्रकार बारह गणों के साथ-साथ वे समीचीन धर्म का उपदेश देते थे।

विहार करते-करते जब एक माह की आयु शेष रह गई, तब वे भगवान सम्मेदशिखर पर आये और विहार बन्द कर वहाँ अचल योग से विराजमान हो गये। ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन रात्रि के पूर्व भाग में उन कृतकृत्य भगवान शान्तिनाथ ने तृतीय शुक्लध्यान के द्वारा समस्त योगों का निरोध कर दिया, बन्ध का अभाव कर दिया और अकार आदि पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण में जितना काल लगता है, उतने समय तक अयोगकेवली अवस्था प्राप्त की। वहीं चतुर्थ शुक्लध्यान के द्वारा वे तीनों शरीरों का नाश कर भरणी नक्षत्र में लोक के अग्रभाग पर जा विराजे। उस समय गुण ही उनका शरीर रह गया था। अतीत काल में गये हुए कर्ममलरहित अनंत सिद्ध जहाँ विराजमान थे वहीं जाकर वे विराजमान हो गये।

उसी समय इन्द्र सहित, आलस्यरहित और बड़ी भक्ति को धारण

करनेवाले चार प्रकार के देव आये और अन्तिम संस्कार–निर्वाणकल्याणक की पूजा कर अपने–अपने स्थान पर चले गये। चक्रायुध को आदि लेकर अन्य नौ हजार मुनिराज भी इस तरह ध्यान कर तथा औदारिक तैजस और कार्मण इन तीन शरीरों को छोड़कर निर्वाण को प्राप्त हो गये।

इस प्रकार जिन्होंने उत्तम ज्ञान दर्शन–सुख और वीर्य से सुशोभित परमौदारिक शरीर में निवास तथा परमोत्कृष्ट विहार के स्थान प्राप्त किये, जो अरहन्त कहलाये और इन्द्र ने जिनकी दृढ़ पूजा की, ऐसे श्री शान्तिनाथ भट्टारक तुम सबके लिए सात परम स्थान प्रदान करें। जो कारणों से सहित समस्त आठों कर्मों को उखाड़कर अत्यन्त निर्मल हुए थे, जो सम्यक्त्व आदि आठ आत्मीय गुणों को स्वीकार कर जन्म–मरण से रहित तथा कृतकृत्य हुए थे, एवं जिनके अष्ट महाप्रातिहार्यरूप वैभव प्रकट हुआ था, वे शान्तिनाथ भगवान अनादि भूतकाल में जो कभी प्राप्त नहीं हो सका ऐसा स्वस्वरूप प्राप्त कर स्पष्ट रूप से तीनों लोकों के शिखामणि हुए थे।

जो पहले राजा श्रीषेण हुए, फिर उत्तम भोगभूमि में आर्य हुए, फिर देव हुए, फिर विद्याधर हुए, फिर देव हुए, फिर बलभद्र हुए, फिर देव हुए, फिर वज्रायुध चक्रवर्ती हुए, फिर अहमिन्द्र पाद पाकर देवों के स्वामी हुए, फिर मेघरथ हुए, फिर मुनियों के द्वारा पूजित होकर सर्वार्थसिद्धि गये, और फिर वहाँ से आकर जगत को एक शान्ति प्रदान करनेवाले श्री शान्तिनाथ भगवान हुए, वे सोलहवें तीर्थंकर तुम सबके लिए चिरकाल तक अनुपम लक्ष्मी प्रदान करते रहें।

जो पहले अनिन्दिता रानी हुई थी, फिर उत्तम भोगभूमि में आर्य हुआ था, फिर विमलप्रभ देव हुआ, फिर श्री विजय राजा हुआ, फिर देव हुआ, फिर अनन्तवीर्य नारायण हुआ, फिर नारकी हुआ, फिर मेघनाद हुआ, फिर प्रतीन्द्र हुआ, फिर सहस्त्रायुध हुआ, फिर बहुत भारी ऋद्धि का धारी अहमिन्द्र हुआ, फिर वहाँ से च्युत होकर मेघरथ का छोटा भाई बुद्धिमान

दृढ़रथ हुआ, फिर अन्तिम अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुआ, फिर वहाँ से आकर चक्रायुध नाम का गणधर हुआ, फिर अन्त में अक्षर-अविनाशी-सिद्ध हुआ।

इस प्रकार अपने हित और किए हुए उपकार को जानने वाले चक्रायुध ने अपने भाई के साथ सौहार्द धारण कर समस्त जगत् के स्वामी श्री शान्तिनाथ भगवान के साथ-सा परमसुख देनेवाला मोक्ष पद प्राप्त किया सो ठीक ही है, क्योंकि महापुरुषों की संगति से इस संसार में कौन-सा इष्ट कार्य सिद्ध नहीं होता? इस संसार में अन्य लोगों की तो बात जाने दीजिए श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र को छोड़कर भगवान तीर्थंकरों में भी ऐसा कौन है, जिसने बारह भवों में से प्रत्येक भव में बहुत भारी वृद्धि प्राप्त की हो? इसलिए हे विद्वान् लोगो, यदि तुम शान्ति चाहते हो तो सबसे उत्तम और सबका भला करनेवाले श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र का ही निरन्तर ध्यान करते रहो।

भोगभूमि आदि के कारण नष्ट हुआ मोक्षमार्ग यद्यपि ऋषभनाथ आदि तीर्थंकरों के द्वारा फिर-फिर से दिखलाया गया था तो भी उसे प्रसिद्ध अवधि के अन्त तक ले जाने में कोई भी समर्थ नहीं हो सका। तदनन्तर भगवान शान्तिनाथ ने जो मोक्षमार्ग प्रकट किया, वह बिना किसी बाधा के अपनी अवधि को प्राप्त हुआ। इसलिए हे बुद्धिमान लोगो! तुम लोग भी आद्यगुरु श्री शान्तिनाथ भगवान की शरण लो। भावार्थ—शान्तिनाथ भगवान ने जो मोक्षमार्ग प्रचलित किया था वही आज तक अखण्ड रूप से चला आ रहा है, इसलिए इस युग के आद्यगुरु श्री शान्तिनाथ भगवान ही हैं। उनके पहले पन्द्रह तीर्थंकरों ने जो मोक्षमार्ग चलाया था, वह बीच-बीच में विनष्ट होता जाता था॥510॥

इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध, भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत त्रिषष्टि-लक्षण महापुराणसंग्रह में शान्तिनाथ तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती का पुराण वर्णन करनेवाला त्रेसठवाँ पर्व समाप्त हुआ।●●

करणानुयोग

भरतक्षेत्र के खण्ड

26. भरतक्षेत्र के छह खण्ड

बीच में विजयार्ध पर्वत पच्चीस योजन ऊँचा, उत्तर में तीन खण्ड, दक्षिण में तीन खण्ड, उत्तर भरत क्षेत्र के तीसरे खण्ड में सौ योजन ऊँचा वृषभाचल पर्वत है जो चक्रवर्ती के मान को खण्डित करता है।

पंचम काल में पहले कल्की चतुरमुख ने पुत्र अजितंजय को राज्य दिया। अन्तिम कल्की के समय एक वीरांगज नामक मुनि, सर्वश्री नामक आर्यिका, अग्निल तथा पंगुश्री नामक श्रावक-श्राविका होंगे। पाँच मेरु में से सुदर्शन मेरु एक लाख योजन ऊँचा, चार मेरु चौरासी हजार योजन ऊँचे हैं।

लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र एवं अन्त के स्वयंभूरमण में जलचर जीव हैं। शेष समुद्र में जलचर जीव नहीं हैं। अकृत्रिम चैत्यालय उत्कृष्ट सौ योजन, मध्यम पचास योजन, जघन्य पच्चीस योजन विस्तार वाले हैं।

27. म्लेच्छ खण्ड :

विजयार्ध पर्वत की दोनों श्रेणियों में और पाँचौं म्लेच्छ खण्डों में हानि-वृद्धि तो होती रहती है, किन्तु समय चौथे काल के समान होता है।

28. विदेह क्षेत्र का समवसरण :

विदेह क्षेत्र में समस्त तीर्थंकरों का समवसरण समान विस्तार का अर्थात् बारह योजन प्रमाण होता है। सभी समवसरण इन्द्र नीलमणि से शोभायमान होते हैं।

29. मानस्तम्भ :

मानस्तम्भ तीर्थंकरों की ऊँचाई से बारह गुने होते हैं। उन मानस्तम्भों के दर्शन करनेमात्र से ही मिथ्यादृष्टियों का मान भंग हो जाता है।

30. तीर्थंकरों के चिह्न की पहिचान :

जन्मकल्याणक के समय इन्द्र भगवान के दाहिने पग के अँगूठे में चिह्न

को देखकर तीर्थंकर का चिह्न निश्चित करता है। इसी चिह्न से तीर्थंकरों की पहचान की जाती है।

31. पाण्डुक शिला का वर्णन :

चारों वनों में सबसे सुन्दर तथा सबसे ऊँचा पाण्डुक वन है। उसकी चारों दिशाओं में चार शिलायें हैं। उनके नाम हैं–पांडुक, पांडुकंबला, रक्ता, रक्तकंबला।

जब तीर्थंकरों के जन्म होते हैं, तब देवगण इन्हीं शिलाओं पर उनका अभिषेक करते हैं। ये शिलाएँ सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और मध्य भाग में आठ योजन मोटी अर्धचन्द्र के आकार की होती हैं।

विशेष—

इन शिलाओं का वर्ण क्रमशः स्वर्ण, चाँदी, तपाये हुए स्वर्ण और रक्त (लाल वर्ण के समान) है।

पहली 'पाण्डुक' नाम की शिला पर भरतक्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है।

दूसरी 'पाण्डुकंबला' नाम की शिला पर पश्चिम विदेह में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों का अभिषेक होता है।

तीसरे 'रक्त' नाम की शिला पर ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों का अभिषेक होता है।

चौथी 'रक्तकंबला' नाम की शिला पर पूर्व विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है।

32. तीर्थंकर माता का दूध नहीं पीते :

इन्द्र ने आदर सहित भगवान को स्नान कराने, वस्त्राभूषण पहिनाने, दूध पिलाने, शरीर के संस्कार करने और खिलाने के कार्य करने में अनेकों देवियों को धाय बनाकर नियुक्त किया था।

33. तीर्थंकर के शरीर की विशेषताएँ :

तीर्थंकरों के, उनके पिताओं के, बलदेवों के, चक्रवर्ती के, अर्ध चक्रवर्ती के, देवों के, तथा भोग भूमि के जीवों के आहार होता है परन्तु निहार

नहीं होता है। तीर्थंकरों के मूँछ-दाढ़ी नहीं होती परन्तु सिर पर बाल होते हैं। केवलज्ञान होते ही उनका शरीर निगोदिया जीवों से रहित हो जाता है।

तीर्थंकर के रक्त का रंग श्वेत दूध समान, वज्रवृषभनाराच संहनन, सर्वांग सुन्दर आकृति, सुगन्धित श्वास, अद्भुत रूप, अतिशय बल एवं मधुर वाणी तथा शरीर में 1008उत्तम चिह्न होते हैं।

34. समवसरण का माहात्म्य :

अर्हंत भगवान के उपदेश देने की सभा का नाम समवसरण है, जहाँ बैठकर तिर्यंच, मनुष्य व देव-पुरुष व स्त्रियाँ सब उनकी अमृतवाणी से तृप्त होते हैं। इसकी रचना विशेष प्रकार से देव लोग करते हैं। इसकी प्रथम सात भूमियों में बड़ी आकर्षक रचनाएँ, नाट्यशालायें पुष्प वाटिकाएँ, वापियाँ, चैत्यवृक्ष आदि होते हैं। मिथ्यादृष्टि अभव्यजन अधिकतर इसी के देखने में उलझ जाते हैं। अत्यन्त भावुक व श्रद्धालु व्यक्ति ही अष्टमभूमि में प्रवेश कर भगवान के साक्षात दर्शनों से तथा उनकी वाणी से अपना जीवन सफल करते हैं।

एक-एक समवसरण में पल्य के असंख्यातवें भाग, विविध प्रमाण के जीव जिनदेव की वन्दना में प्रवृत्त होते हुए स्थिर रहते हैं। कोठों के क्षेत्र ये यद्यपि जीवों का क्षेत्रफल असंख्यात गुणा है, तथापि वे सब जिनदेव के माहात्म्य से एक दूसरे से अस्पृष्ट रहते हैं। जिन भगवान के माहात्म्य से बाल प्रभृति जीव प्रवेश अथवा निकलने में अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर संख्यात योजन चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ पर जिन भगवान के माहात्म्य से आतंक, रोग, मरण, उत्पत्ति, बैर, कामबाण, तृष्णा, पिपासा और क्षुधा की पीड़ायें नहीं होती हैं।

गृहीत मिथ्यादृष्टि, अभव्यजन श्री मण्डप के भीतर नहीं जाते। इन (बारह) कोठों में गृहीत मिथ्यादृष्टि अभव्य और असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते तथा अनध्यवसाय से युक्त, सन्देह से संयुक्त और विविध प्रकार की विपरीतताओं से सहित जीव भी नहीं होते हैं। सप्तभूमियों में अनेक स्तूप हैं। उनमें सर्वार्थसिद्धि नाम के अनेकों स्तूप हैं। उनके आगे देदीप्यमान शिखरों से युक्त भव्यकूट नाम के स्तूप रहते हैं। जिन्हें अभव्य जीव देख नहीं पातें; क्योंकि उनके प्रभाव से उनके नेत्र अंधे हो जाते हैं।

क्रमशः

प्रथमानुयोग

कवि परिचय

पण्डित वृन्दावनदास

पण्डित वृन्दावनदास जी का जन्म संवत् 1848 में शाहाबाद जिले के बारा नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम धर्मचन्द तथा माता का नाम सिताबी था। इनके पिता एक अच्छे कवि थे, इस प्रकार कविता करना इन्हें विरासत में मिला था। काशी में इनकी सुसराल थी, वहाँ टकसाल का कार्य होता है।

एक बार की बात है, एक अंग्रेज टकसाल देखने आया। पण्डितजी उस समय वहाँ मौजूद थे। उन्होंने टकसाल दिखाने से मना कर दिया। इस पर अंग्रेजी कुपित हो गया। समय बीतता गया। कुछ समय पश्चात् वृन्दावन जी खजांची का कार्य करने लगे। भाग्य की बात है वह अंग्रेज कलेक्टर होकर आ गया। उसने पण्डितजी को पहचान लिया तथा अपना बदला लेने के लिए उन पर झूठा आरोप लगाकर उन्हें तीन माह का कारावास दिलवा दिया। इससे पण्डित जी को बड़ा आघात पहुँचा। कारावास में वे अधिकांश समय भगवत् भजन एवं लेखन में व्यतीत करते थे। एक दिन वे 'हे दीनबन्धु श्रीपति करुणा निधान जी' वाली स्तुति पढ़ रहे थे। वही अंग्रेज अधिकारी उस समय निरीक्षण के लिए आया हुआ था। कविवर की भक्ति भावना से वह बहुत प्रभावित हुआ और उन्हें छोड़ दिया। इस प्रकार उन्होंने अपना सारा जीवन भगवत् आराधना एवं आध्यात्मिक साहित्य सृजन में लगा दिया।

आपके द्वारा रचित निम्न कृतियां है :—

1. प्रवचनसार टीका, 2. चतुर्विंशति जिन-पूजा पाठ, 3. तीस-चौबीसी पूजा, 4. छन्द शतक, 5. वृन्दावन विलास, 6. अरहन्तपासा केवली

इनके काव्य का नमूना प्रस्तुत है :—

हमारी बिरियां काहे करत अबार जी।
इह दरबार दीन पर करुना होत सदा चलि आई जी॥

मेरी विथा विलोकि हे प्रभु, काहे सुधि बिसराई जी।
मैं तो चरन कमल को किंकर, चाहूं पद सेवकाई जी॥
हे प्राणनाथ तजो नहिं कबहुं, तुम सो लगन, लगाई जी।
अपनी विरद निवाहो दयानिधि, दे सुख 'बृन्द' बड़ाई जी॥

वृन्दावन जी की भाषा पर पूर्वी भाषा का प्रभाव है। भक्ति की उच्च भावना तथा धार्मिक सजगता इनके पदों में विद्यमान है, निराशा के पश्चात् आशा का सन्देश तथा आराध्य में अटूट विश्वास इनके पदों की जान है। नीति और ज्ञानोपदेशक पदों में जैनागम का मर्म कूट-कूट कर भरा है।

धन-धन श्री गुरु दीनदयाल।
परम दिगम्बर सेवाधारी, जगजीवन प्रतिपाल।
मूल अठाइस चौरासी लख, उत्तर गुण मनिमाल॥धन॥
देह भोग भय सो विरक्त नित, परिसह सहत त्रिकाल॥धन॥
शुद्ध उपयोग जोग मुदमंडित, चाखत सुरस रसाल॥धन॥

वृन्दावन जी की वर्णन शैली अत्यन्त सरल एवं बोधगम्य है। सम्पूर्ण समाज को इन पर गर्व है।

......पृष्ठ 17 का शेष

समाधान :- अपने गहरे संस्कार हों तो भविष्य में कार्यकारी होते हैं। स्वयं यथार्थ कारण दिया हो तो कार्य हो ही, परन्तु कारण ऊपर-ऊपर से दे तो कार्य नहीं होता। 'यह कार्य मुझे करना ही है, इसे किये ही छुटकारा है'—ऐसे भीतर से स्वयं गहरे दृढ़ संस्कार डाले तो भविष्य में कार्यकारी हुए बिना रहते ही नहीं। यदि उसको यथार्थ देखना ग्रहण हुई हो तो किसी भी समय अन्तर से पलटा खाये बिना रहता ही नहीं; किसी को जल्दी होता है तो किसी को समय लगता है, किन्तु अनन्त काल नहीं लगता। जिसे गहरी रुचि हुई उसे काल मर्यादित हो जाता है, संसार परित हो जाता है।

क्रमशः

करणानुयोग

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

यहाँ उदाहरण का अर्थ यह है कि जिस प्रकार जानता था, उसी प्रकार वहाँ किसी जीव के अवस्था हुई, इसलिए यह उस जानने की साक्षी हुई।

तथा जैसे कोई सुभट है, वह सुभटों की प्रशंसा और कायरों की निंदा जिसमें हो ऐसी किन्हीं पुराण-पुरुषों की कथा सुनने से सुभटपने में अति उत्साहवान होता है, उसी प्रकार धर्मात्मा है, वह धर्मात्माओं की प्रशंसा और पापियों की निन्दा जिसमें हो, ऐसे किन्हीं पुराण-पुरुषों की कथा सुनने से धर्म में अति उत्साहवान होता है। इस प्रकार यह प्रथमानुयोग का प्रयोजन है।

अब करणानुयोग का वर्णन करते हैं—

करणानुयोग

आचार्य ब्रह्मदेव कहते हैं—

त्रिलोकसारे जिनान्तरलोकविभागादि ग्रन्थव्याख्यानं करणानुयोगो विज्ञेयः। **(वृहद् द्रव्यसंग्रह, टीका, पृ. 208)**

अर्थात् त्रिलोकसार में तीर्थंकरों का अन्तरकाल, लोक विभाग आदि का व्याख्यान है। ऐसे ग्रंथ करणानुयोग के जानना।

इस अनुयोग में जीव के परिणामों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। इसका दूसरा नाम गणितानुयोग भी है अर्थात् जिस अनुयोग में गणित के प्रयोगों द्वारा विषयवस्तु को समझाया गया हो, वह करणानुयोग है। जिस प्रकार रत्न या सुवर्ण के तोलने में वायु का भार भी असहनीय होता है, उसी प्रकार करणानुयोग में परिणामों की किंचित् मात्र न्यूनाधिकता भी सहनीय नहीं होती।

आचार्य समंतभद्र कहते हैं—

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनाञ्च।
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगञ्च॥

रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक 44

अर्थात् लोक और अलोक के विभाजन का उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के छह-छह विभागों के परिवर्तनों का और चतुर्गति का दर्पण के समान यथावत् ज्ञान करानेवाला करणानुयोग है।

आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती कहते हैं—

उदयदलं आयामंवासं पुव्वावरेण भूमिमुहे।
सत्तेक पंचएक्क य रज्जू मज्झम्हि हाणिचयं॥

त्रिलोकसार, गाथा 113

अर्थात् लोक का उदय (ऊँचाई) चौदह राजू प्रमाण है, उसकी चौड़ाई सात राजू प्रमाण है अर्थात् दक्षिणोत्तर व्यास सात राजू है। पूर्व-पश्चिम व्यास भूमिमुख में सात, एक, पाँच और एक राजू है तथा मध्य में हानिचय स्वरूप है। यह सभी करणानुयोग का विषय है।

जैनागम में करणानुयोग का सर्वोत्कृष्ट स्थान है, कारण परिणामों को कहते हैं। आचार्यों ने करणानुयोग का भाव 'बावन तोला पाँच रत्ती' की कहावत को चरितार्थ करने जैसा लिखा है।

षट्खण्डागम, कषायपाहुड़, धवला, जयधवला आदि ग्रंथ करणानुयोग के उदाहरण हैं।

करणानुयोग का प्रयोजन

करणानुयोग में जीवों के व कर्मों के विशेष तथा त्रिलोकादिक की रचना निरूपित करके जीवों को धर्म में लगाया है। जो जीव धर्म में उपयोग लगाना चाहते हैं; वे जीवों के गुणस्थान, मार्गणा आदि विशेष तथा कर्मों के कारण अवस्था फल, किस, किसके, कैसे-कैसे पाए जाते हैं, इत्यादि विशेष तथा त्रिलोक में नरक-स्वर्गादि के ठिकानों की पहचान कर पाप से विमुख होकर धर्म में लगते हैं तथा ऐसे विचार में उपयोग रम जाए, तब पाप प्रवृत्ति छूटकर स्वयमेव तत्काल धर्म उत्पन्न होता है। उस अभ्यास से तत्त्व-ज्ञान की भी प्राप्ति शीघ्र होती है तथा ऐसा सूक्ष्म यथार्थ कथन जिनमत में ही है, अन्यत्र नहीं है। ऐसा जानकर जीव जिनमत का श्रद्धानी होता है।

तथा जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर इस करणानुयोग का अभ्यास करते हैं, उन्हें यह उसके विशेषणरूप भासित होता है। जो जीवादिक तत्त्वों को आप जानता है, उन्हीं के विशेष करणानुयोग में किए हैं, वहाँ कितने ही विशेषण तो यथावत् निश्चयरूप हैं, कितने ही उपचार सहित व्यवहाररूप है। कितने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादिक के स्वरूप प्रमाणादि रूप हैं, कितने ही निमित्त आश्रयादि अपेक्षा सहित हैं, इत्यादि अनेक प्रकार के विशेषण निरूपित किए हैं, उन्हें ज्यों का त्यों मानता हुआ करणानुयोग का अभ्यास करता है।

इस अभ्यास से तत्त्वज्ञान निर्मल होता है। जैसे कोई यह तो जानता था कि यह रत्न है परन्तु उस रत्न के बहुत से विशेष जानने पर निर्मल रत्न का पारखी होता है; उसी प्रकार तत्त्वों को जानता था कि जीवादिक हैं, परन्तु उन तत्त्वों में बहुत विशेष जाने तो निर्मल तत्त्वज्ञान होता है, तत्त्वाान निर्मल होने पर आप ही विशेष धर्मात्मा होता है तथा अन्य ठिकाने उपयोग को लगाए तो रागादि की वृद्धि होती है। छद्मस्थ का उपयोग निरन्तर एकाग्र नहीं रहता, इसलिए ज्ञानी इस करणानुयोग के अभ्यास में उपयोग को लगाता है, उससे केवलज्ञान द्वारा देखे गए पदार्थों का जानपना इसके होता है, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष ही का भेद है, भासित होने में विरुद्धता नहीं है। 'करण' अर्थात् गणित कार्य के कारणरूप सूत्र, उनका जिसमें अनुयोग, अधिकार हो, वह करणानुयोग है। इसमें गणित का वर्णन मुख्यता से है—ऐसा जानना।

इस प्रकार करणानुयोग का वर्णन हुआ।

वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न

मौ : श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर का वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर दिनांक 22 फरवरी को अमायन से पधारे ब्रह्मचारी रवि भैया, ब्रह्मचारी शशांक भैया ने श्री रत्नत्रय विधान का मंगलमय आयोजन करवाया। तीर्थधाम मङ्गलायतन से डॉ. सचिन्द्र शास्त्री द्वारा सुबह मोक्षमार्गप्रकाशक तथा सायंकाल श्री प्रवचनसारजी ग्रन्थ पर स्वाध्याय कराया गया। अन्तिम दिन 25 फरवरी 2024 को शान्तिनाथ भगवान का मंगल विहार भी कराया गया। सम्पूर्ण कार्यक्रम में ब्रह्मचारी सतेन्द्रभैया, पण्डित शुद्धात्म शास्त्री मौ का सहयोग प्राप्त हुआ।

<u>बालवाटिका</u>

युद्ध में भी दया!

नेपोलियन अपनी बड़ी सेना के साथ आस्ट्रिया की राजधानी वियना के पास पहुँचा, तब उसने अपना एक दूत सन्धि–प्रस्ताव लेकर नगर में भेजा। दूत को नगर के लोगों ने मार डाला। दूत के मर जाने की खबर जब नेपोलियन को मिली तो वह बहुत क्रुद्ध हो गया। अपनी फ्रांसीसी सेना को लेकर उसने नगर घेरकर, तोपों से गोले बरसा कर नगर के भवनों को नष्ट करने का आदेश दे दिया।

तोपों के गोले नगर के राजमहलों पर भी प्रहार करने लगे। सारा शहर तोपों के गोलों की आवाज व धुएँ से काँपने लगा। तभी नगर का मुख्य दरवाजा खुला। हाथ में सफेद झंडा लिए एक दूत निकला। उसे नेपोलियन के सामने पहुँचा दिया गया।

दूत ने कहा–सम्राट आपकी तोपों के गोले हमारे सम्राट के महल पर गिर रहे हैं, जहाँ सम्राट की पुत्री बीमार पड़ी है। यदि इसी प्रकार गोलाबारी होती रही तो सम्राट को महल खाली कर उनकी बीमार पुत्री को अन्यत्र ले जाना पड़ेगा।

नेपोलियन के सेनानायकों ने कहा–सम्राट! हमें विजय मिलने वाली है। हमें आक्रमण में और तेजी लानी चाहिए। यह तो शुभ सन्देश हमें मिल रहा है। इस दूत को हमें शीघ्र मार देना चाहिए। इससे हमारे दूत के मारे जाने का बदला भी मिल जायेगा।

नेपोलियन ने कहा–यह युद्ध–नीति की बात तो ठीक है, किन्तु मानवता का तकाजा है कि एक बीमार राजकुमारी पर दया की जाये। अपनी विजय चाहे खतरे में पड़ जाये, परन्तु इस समय तोपों के मुँह तत्काल बन्द कर दिये जायें। दूत को नेपोलियन ने पुनः अपना पूर्व का सन्धि प्रस्ताव लेकर वापस भेज दिया।

आस्ट्रिया के सम्राट ने जब नेपोलियन के द्वारा तोपों के बंद करने और सद्भावनापूर्ण व्यवहार को दूत के मुख से सुना वह नेपोलियन से सन्धि करने को राजी हो गया।

शिक्षा–सज्जन पुरुष शत्रु नहीं, शत्रुता समाप्त करने में विश्वास रखता है। व्यक्ति अपने मानवीय गुणों से ही महान बनता है।

''जिस प्रकार–उसी प्रकार'' में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– भारत में बाढ़ आयी पिताजी का ऑपरेशन हुआ इत्यादि कथनों में पूरे भारत में बाढ़ नहीं आई तथा पिताजी के पूरे शरीर का ऑपरेशन नहीं हुआ, परन्तु शरीर के एक अंग में ही हुआ।

उसी प्रकार– आत्मा रागी है इस कथन को पढ़कर पूरी आत्मा को रागी मत मान लेना, मात्र एक समय की पर्याय में ही राग है। आत्मा स्वभाव तो राग से सर्वथा पृथक् ही है।

जिस प्रकार– कोई व्यक्ति तपती गर्मी में वातानुकूलित कमरे से बाहर आना पसन्द नहीं करता।

उसी प्रकार– ज्ञानी को निजात्म स्वभाव से बाहर निकलना सुहाता नहीं है।

जिस प्रकार– कोई शिला को कंठ में बांध भुजाओं से नदी को नहीं पार कर सकता।

उसी प्रकार– रागादि के भार से चतुर्गति रूप नदी नहीं तिरी जा सकती है।

जिस प्रकार– वैद्य विभिन्न रोगियों की प्रकृति, परिस्थिति, आयु आदि अलग होने के कारण एक ही रोग होने पर विभिन्न औषधियाँ देता है।

उसी प्रकार– अनेक जीव के भाव, उदय, क्षयोपशमादि भिन्न–भिन्न होने के कारण उन्हें चार अनुयोगों की शैलियों से उपदेश दिया है। परन्तु चारों अनुयोगों का प्रयोजन एक ही है।

जिस प्रकार– बस में जल्दी जाने की आकुलता से शान्ति से न बैठे, बार–बार खड़े होकर विकल्प करता रहे तो बस जल्दी पहुंचने वाली नहीं है।

उसी प्रकार– आकुलता से अपना सुखानुभव रूकता है, बाह्य के कार्य तो अपने समय से ही होंगे।

जिस प्रकार– पदाधिकारी बदल जाने से मन्दिर की व्यवस्थाएँ नहीं बदलती; ड्राईवर बदल जाने से गाड़ी का कुछ नहीं बिगड़ता; माली बदल जाने से भी बाग वही रहता है।

उसी प्रकार– तेरे कार्य की ओर से विकल्प हटा लेने से कार्यों की स्वतंत्र व्यवस्था में कोई अन्तर पड़ने वाला नहीं हैं, वे तो स्वयं की योग्यतानुसार हो रहे है।

जिस प्रकार– पानी बरसने पर तपन, आंधी आदि स्वयं शान्त हो जाते है।

उसी प्रकार– परिणति में धर्मामृत बरसने पर भव ताप, विकल्पों की आंधी शांत हो जाती है।

जिस प्रकार– भावरहित क्रिया कार्यकारी नहीं।

उसी प्रकार– भेद विज्ञान रहित विशुद्ध भाव भी मुक्ति मार्ग में कार्यकारी नहीं।

जिस प्रकार– पुण्य समस्त भोगियों के भोगों का मूल है।

उसी प्रकार– समस्त मुक्ति मार्ग का मूल सम्यग्दर्शन है।

क्रमशः **संकलन – स्व० प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की**

<u>समाचार-दर्शन</u>

मंगल अवसर

तीर्थधाम चिदायतन पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

हस्तिनापुर में, तीर्थधाम चिदायतन का निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है, तीर्थधाम मंगलायतन के निर्देशन में ही तीर्थधाम चिदायतन का पंचकल्याणक – 01 दिसम्बर से 06 दिसम्बर 2024 तक होना निश्चित हुआ है।

जगत में पंचकल्याणक सम्यग्दर्शन का सर्वोत्कृष्ट निमित्त कार्य है आप यहाँ के अभिन्न अंग हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आप सपरिवार पधारे... आप सभी लोग तो पधार ही रहे हैं, साथ में और भी अपने परिजनों साधर्मी जनों को लेकर आना है।

आप हमसे निम्नरूप से जुड़ सकते हैं —

पंचकल्याणक में जो भी पात्र बाकी है उनको भरा जाना है....

पद	संख्या
भगवान आदिनाथ की 71 इंच उन्नत श्वेत मार्बल की कायोत्सर्गवंत प्रतिमा	
भगवान महावीर की 71 इंच उन्नत श्वेत मार्बल की कायोत्सर्गवंत प्रतिमा	
ईशान इन्द्र–इन्द्राणी	
सानत इन्द्र–इन्द्राणी	
माहेन्द्र इन्द्र–इन्द्राणी	
9 नंबर से 12 नंबर पद इन्द्र	
13 नंबर से 16 नंबर पद इन्द्र	
लौकान्तिक देव	
माता–पिता	
महामंत्री	
यज्ञनायक	
1 से 8 नम्बर राजा	
12 वाँ राजा	
राजसभा के छड़ीदार	2
भूमिगोचर राजा	4

विद्याधर राजा	4
अष्टदेवी	16
56 कुमारी	
चौबीसी जिनालय शिखर	
चौबीसी जिनालय शिखर कलश	
चौबीसी जिनालय वेदी	
मुख्य शिखर ध्वजा	
मुख्य तोरण द्वार	
सिंह द्वार	
मुख्य प्रवेश द्वार	
मुख्य निकास द्वार	
जिनवाणी विराजमानकर्ता	
श्री कुन्दकुन्दाचार्य फोटो	
श्री अकम्पनाचार्य फोटो	
पण्डित टोडरमलजी फोटो	
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी फोटो	
रैम्पमार्ग प्रदर्शनी	
शान्तिनाथ जीवनगाथा	

यह अवसर चूकने जैसा नहीं है सभी किसी न किसी रूप में जुड़े, आपके जो भी भाव हो कृपया सूचित करें।

आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि आप हमारे आग्रह को अवश्य स्वीकार करके इस **पामर से परमात्मा** बनने के महान कार्य में अपनी सहभागिता अवश्य प्रदान करेंगे।

किसी का कोई सुझाव हो तो हमें अवश्य बतलाएँ।

धन्यवाद

सम्पर्क :-

पण्डित सुधीर शास्त्री, 9756633800 ; डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, 7581060200

वैराग्य समाचार

फतेपुर (गुजरात) : छोटे बाबूभाई के नाम से विख्यात बच्चों को विशिष्ट शैली में पढ़ाने वाले सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के उपासक, पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य शिष्य पण्डित श्री बाबूभाई मेहता फतेपुर का 90 वर्ष की उम्र में देहपरिवर्तन हो गया है। तीर्थधाम मङ्गलायतन से आपको विशेष स्नेह था और मङ्गलार्थी बच्चों को धार्मिक अध्ययन हेतु आप पधारते थे।

अहमदाबाद : श्री अमृतलाल चुन्नीलाल मेहता का देहपरिवर्तन हो गया है। आप सच्चे जिनधर्म सेवक, पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त, श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के ट्रस्टी और सभी मुमुक्षुओं पर आपका वरदहस्त था। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन एवं तीर्थधाम चिदायतन के प्रति विशेष स्नेह था।

विदिशा : डॉ० आर० के० जैन विदिशा का देहपरिवर्तन हो गया है। आप प्रतिदिन स्वाध्याय सभा संचालित करते थे। आपने आत्माराधना के बल पर ही जीवन पूर्ण किया।

वाशिम : श्री राजेन्द्र पाटनी का देहपरिवर्तन हो गया है। आप मुमुक्षु समाज में नवचेतना का संचार किया करते थे। आप कारंजा लाड के विधायक एवं ब्रह्मचर्य आश्रम के प्रति विशेष स्नेह रखते थे।

जबलपुर : श्रीमती कमलादेवी जैन का देहपरिवर्तन हो गया है। आपका जीवन सरल स्वभावी धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत था। देव-शास्त्र-गुरु की अनन्य भक्त थीं। आप श्री स्वप्निल जैन, तीर्थधाम मङ्गलायतन की दादी सास थीं।

भिण्ड : श्री ज्ञानचन्द जैन का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामपूर्वक हुआ है। आप पण्डित नितिन शास्त्री सूरत के पिताश्री थे। आप स्वाध्याय प्रेमी जीव थे।

विदिशा : श्रीमती सुशीलाबाईजी बड़कुल का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामपूर्वक हुआ है। आप पण्डित जवाहरलालजी बड़कुल की धर्मपत्नी थीं। आपका सम्पूर्ण परिवार देव-शास्त्र-गुरु की आराधना में संलग्न है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार दिवंगत आत्माओं के सुगतिगमन, बोधिलाभ एवं शीघ्र मुक्ति प्राप्ति की भावना भाता है।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित
चौदहवीं पुस्तक की वाचना 01 मार्च 2024 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम – आदरणीय बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन) **षट्खण्डागम (धवलाजी)**

रात्रि 07.30 से 08.30 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

08.30 से 09.15 बजे तक समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्चारण सहित सामान्यार्थ

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - tm@4321
youtube channel - teerthdhammangalayatan

- के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

अप्रेल 2024 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

2 अप्रेल – चैत्र कृष्ण 8 **अष्टमी**
श्री शीतलनाथ गर्भ कल्याणक

3 अप्रेल – चैत्र कृष्ण 9
श्री ऋषभदेव जन्म-तप कल्याणक

7 अप्रेल – चैत्र कृष्ण 13-14 **चतुर्दशी**

8 अप्रेल – चैत्र कृष्ण 15
श्री अनंतनाथ ज्ञान-मोक्ष कल्याणक
श्री अरनाथ मोक्ष कल्याणक

9 अप्रेल – चैत्र शुक्ल 1
श्री मल्लिनाथ गर्भ कल्याणक

11 अप्रेल – चैत्र शुक्ल 3
श्री कुंथुनाथ ज्ञान कल्याणक

13 अप्रेल – चैत्र शुक्ल 5
दशलक्षण प्रारम्भ
श्री अजितनाथ मोक्ष कल्याणक

14 अप्रेल – चैत्र शुक्ल 6
श्री संभवनाथ मोक्ष कल्याणक

16 अप्रेल – चैत्र शुक्ल 8 **अष्टमी**

19 अप्रेल – चैत्र शुक्ल 11
श्री सुमतिनाथ जन्म ज्ञान मोक्ष कल्याणक

21 अप्रेल – चैत्र शुक्ल 13
श्री महावीर जन्म कल्याणक

22 अप्रेल – चैत्र शुक्ल 14 **चतुर्दशी**
दशलक्षण समाप्त

23 अप्रेल – चैत्र शुक्ल 15
श्री पद्मप्रभ ज्ञान कल्याणक

25 अप्रेल – वैशाख कृष्ण 2
श्री पार्श्वनाथ गर्भ कल्याणक

29 अप्रेल – वैशाख कृष्ण 6
श्री अभिनंदननाथ गर्भ-मोक्ष कल्याणक

तीर्थधाम चिदायतन

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

स्वर्णिम अवसर—

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन अलीगढ़ में प्रवेश हेतु

27 मार्च से 31 मार्च 2024 तक प्रवेश शिविर

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के आगामी सत्र में (अंग्रेजी माध्यम) कक्षा आठवीं तथा ग्यारहवीं (संस्थागत) के लिए भी सुनहरा अवसर है जो भी छात्र यहाँ के सुरम्य वातावरण में उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का भी लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे हमारे कार्यालय अथवा वेबसाइट से प्रवेश आवेदन-पत्र मंगाकर अपेक्षित जानकारियों एवं प्रपत्रों के साथ भरकर भेज देवें।

विदित हो कि कम से कम 60 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त विद्यार्थी ही आवेदन योग्य हैं, स्थान सीमित हैं। अत: शीघ्र ही पूर्ण जानकारी प्राप्त कर आवेदन-पत्र भेजने का अनुरोध है। **अन्तिम तिथि - 20 मार्च 2024।**

तीर्थधाम मङ्गलायतन (प्रवेश फार्म, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन)
C/o विमलांचल, हरिनगर, गोपालपुरी, अलीगढ़ (उ.प्र.) 202001
सम्पर्क सूत्र-9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री); 8279559830 (उपप्राचार्य)
info@mangalayatan.com; www.mangalayatan.com

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि०वि०

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com